Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XIV, Issue No. 1, October-2017, ISSN 2230-7540

हिंदी सिनेमा में हुए संरचनात्मक परिवर्तन का अध्ययन

Renu Kansal[1]* Dr. Govind Dwivedi[2]

[1]Research Scholar of OPJS University, Churu Rajasthan

[2]Assistant Professor, OPJS University, Churu Rajasthan

----------X----------

प्रस्तावना

सिनेमा अर्थात् चलचित्र का अर्थ उस चित्र से है जो पर्दे पर गति के साथ मौजूद हो। किसी गतिमान चित्र को मुख्य बिन्दु उसकी गति ही है। प्रसिद्ध इतिहासकार बी. डी. गर्ग ने कहा है, लगभग 25 हजार वर्ष पूर्व सभ्यता के पूर्वार्द्ध में किसी अनजान चित्रकार ने एल्टामिरा स्पेन की गुफाओं में बहुत से पैरों वाले एक सुअर का भित्रि चित्र बनाया था, जो शायद मनुष्य का प्रथम प्रयास था, जिसमें चित्र को गति के महत्त्व के साथ प्रस्तुत किया गया था।

इसके बाद चित्रों में गत्यात्मकता दिखाने के कई कोशिश हुई जिनमें 'जैट्राप' नामक यंत्र महत्त्वपूर्ण है। इसका निर्माण 1935 ई. के आसपास हुआ। यह एक ऐसा यंत्र था जिसमें बहुत से चित्र एक चर्खा में पास-पास चिपका दिए जाते थे। इसके आगे एक और चर्सी लगी होती थी। जब 'जैट्राप' को घुमाया जाता था, तो देखने वाले को चित्रों में गति का अनुभव होता था।

समय के साथ समाज बदलता है। समाज बदलने के साथ सभी कलारूपों के कथ्य और प्रस्तुति में अंतर आता है। हम सिनेमा की बात करें तो पिछले सौ सालों के इतिहास में सिनेमा में समाज के समान ही गुणात्मक बदलाव आया है। 1913 से 2013 तक के सफर में भारतीय सिनेमा खास कर हिन्दी सिनेमा ने कई बदलावों को देखा। बदलाव की यह प्रक्रिया पारस्परिक है। आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक बदलाव से । समाज में परिवर्तन आता है। इस परिवर्तन से सिनेमा समेत सभी कलाएं प्रभावित होती हैं। इस परिप्रेक्ष्य में हिन्दी सिनेमा को देखें तो अनेक स्पष्ट परिवर्तन दिखलाई देते हैं। कथ्य, शिल्प और प्रस्तुति के साथ बिजनेस में भी इन बदलावों को देखा जा सकता है। हिन्दी सिनेमा के अतीत के परिवर्तनों और मुख्य प्रवृत्तियों से सभी परिचित हैं।

सिनेमा अर्थात् 'चलचित्र' का अर्थ उस चित्र से है जो पर्दे पर गति के साथ मौजूद हो। किसी गतिमान चित्र को मुख्य बिन्दु उसकी गति ही है। प्रसिद्ध इतिहासकार बी. डी. गर्ग ने कहा है, लगभग 25 हजार वर्ष पूर्व सभ्यता के पूर्वार्द्ध में किसी अनजान चित्रकार ने एल्टामिरा स्पेन की गुफाओं में बहुत से पैरों वाले एक सुअर का भित्रि चित्र बनाया था, जो शायद मनुष्य का प्रथम प्रयास था, जिसमें चित्र को गति के महत्त्व के साथ प्रस्तुत किया गया था।

इसके बाद चित्रों में गत्यात्मकता दिखाने के कई कोशिश हुई जिनमें 'जैट्राप' नामक यंत्र महत्त्वपूर्ण है। इसका निर्माण 1935 ई. के आसपास हुआ। यह एक ऐसा यंत्र था जिसमें बहुत से चित्र एक चर्खा में पास-पास चिपका दिए जाते थे। इसके आगे एक और चर्सी लगी होती थी। जब 'जैट्राप' को घुमाया जाता था, तो देखने वाले को चित्रों में गति का अनुभव होता था।

समय के साथ समाज बदलता है। समाज बदलने के साथ सभी कलारूपों के कथ्य और प्रस्तुति में अंतर आता है। हम सिनेमा की बात करें तो पिछले सौ सालों के इतिहास में सिनेमा में समाज के समान ही गुणात्मक बदलाव आया है। 1913 से 2013 तक के सफर में भारतीय सिनेमा खास कर हिन्दी सिनेमा ने कई बदलावों को देखा। बदलाव की यह प्रक्रिया पारस्परिक है। आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक बदलाव से । समाज में परिवर्तन आता है। इस परिवर्तन से सिनेमा समेत सभी कलाएं प्रभावित होती हैं। इस परिप्रेक्ष्य में हिन्दी सिनेमा को देखें तो अनेक स्पष्ट परिवर्तन दिखलाई देते हैं। कथ्य, शिल्प और प्रस्तुति के साथ बिजनेस में भी इन बदलावों को देखा जा सकता है। हिन्दी सिनेमा के अतीत के परिवर्तनों और मुख्य प्रवृत्तियों से सभी परिचित हैं।

1833 ई. में विलियम जार्ज हार्नर नामक एक अंग्रेज ने एक यंत्र का आविष्कार किया जिसे 'शैतान का चक्र' ममस व िजीम कमअपस) नाम दिया गया। इस यंत्र से जो छायाचित्र

www.ignited.in

प्रतिबिम्बित होते थे, वे प्रेत की छाया जैसे लगते थे इसलिए इस यंत्र को यह नाम दिया गया। इस यंत्र में एक चर्खी पर एक के बाद एक बहुत से चित्रों को चिपकाकर लपेट दिया जाता था। फिर एक छिद्र के द्वारा प्रकाश डालकर विपरीत दीवार पर उन चित्रों की छाया डाली जाती थी और चर्खी को धीरे-धीरे घुमाया जाता था। चर्खी घुमाने से प्रेत की छाया जैसे बड़े-बड़े प्रतिबिम्ब दीवार पर गतिमान होते दिखाई देते थे। इन प्रयोगों के समय से लगभग दो शताब्दी पूर्व पादरी कर्चर ने 1664 ई. में इसी प्रकार मैजिक लैन्टर्न का आविष्कार किया।

सन् 1839 के आसपास फ्रांस के लुइस डेग्यूरे ने छायाँकन के कैमरे का आविष्कार किया। इसी से प्रेरित होकर सेन फ्रांसिस्को के अंग्रेज फोटोग्राफर ईडवियर्ड माईब्रिज ने 1877 ई. में अपने एक प्रयोग से सिनेमा के कैमरे के आविष्कार की ओर कदम बढ़ाया। इस प्रयोग में उसने एक सीध में 25 कैमरे लगाकर एक भागते हुए घोड़े की तस्वीर खीचीं। इस प्रयोग के लिए माइब्रिज ने सभी कैमरों के शटर एक धागे से इस प्रकार बाँधे कि, जब घोड़ा उन कैमरों के सामने से दौड़ा तो एक के बाद एक धागा टूटता गया और शटर खुल कर बन्द होते गये। इस प्रक्रिया में घोड़े की 25 तस्वीरें खिचीं और उन्हें एक साथ रखने पर घोड़ा दौड़ता हुआ प्रतीत होने लगा। सिनेमा की जमीन बनाने की दिशा में यह एक सफल प्रयोग था।

माइब्रिज के इस आविष्कार के बाद सिनेमा के विकास में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आविष्कार थामस एल्वा एडीसन का है। इस अमेरिकन वैज्ञानिक ने फोनोग्राफ और इलेक्ट्रॉनिक बल्ब का आविष्कार किया था।

इन महत्त्वपूर्ण आविष्कारों के बाद उसने सबसे पहले सिनेमा के आविष्कार का एक निश्चित प्रारूप बनाया। 1887 ई. से चले रहे अपने प्रयोगों के परिणामस्वरूप उसने 3 अक्टूबर 1889 ई. में न्यू जर्सी नगर के वेस्ट ऑरेंज क्षेत्र में स्थित अपनी प्रयोगशाला में सिनेमेटोस्कोप नामक यंत्र का सफल एवं ऐतिहासिक प्रदर्शन किया।

कंटेंट में परिवर्तन

अपने शुरुआती दौर में ज्यादातर हिन्दी फिल्में धार्मिक थीं। राजा हरिश्चंद्र, भस्मासुर मोहनी, सत्यवान-सावित्री, लंका दहन, जरासंध वध आदि इसके उदाहरण हैं। इसके बाद की फिल्में समाज में वयास रूढ़ियों और कुप्रथाओं पर टिप्पणी करने लगीं। फिल्मों के निर्माण के शुरू के दौर में 60 प्रतिशत से भी अधिक फिल्में धार्मिकद्दपौराणिक कथानकों पर बनती थीं। बाद के वक्त में बेरोजगारी से पीड़ित युवा वर्ग की रुचि धर्म में नहीं रह गई। रोजी-रोटी के जुगाड़ में ही उसकी जिंदगी बीतने लगी। ऐसे में धार्मिक फंतासी से उसे खुशी नहीं मिलती थी। वह हल्की-फुल्की मनोरंजक फिल्मों की ओर मुड़ गया। धार्मिक फिल्मों से युवा वर्ग विमुख हुआ, तो ऐसी फिल्में महज पुरानी पीढ़ी के लोगों तक सीमित रह गईं।

धार्मिक फिल्मों के बाद ऐतिहासिक फिल्मों का दौर आया। यह भी काफी लंबा खिंचा। 1934 में 'राजपूतानी' बनी। इतिहास के प्रसिद्ध चरित्रों और घटनाओं पर फिल्में बनने लगीं। 1931 में फिल्में सवाक हुई, तो संगीत और नृत्य लोगों की पसंद का आधार बनने लगे। इस तरह दृश्य के साथ ध्वनि की जुगलबंदी हिट होने लगी। 'देवदास' उन्हीं दिनों की एक हिट फिल्म थी, जिसे दर्शकों ने इसी वजह से पसंद किया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के समय में नाच, गाने और रोमांस की ये फिल्में बहुत पसंद की जाने लगीं। बुद्धिजीवियों के एक वर्ग का तो यहां तक मानना था कि इन फिल्मों से कई संस्कृतियों में नव जीवन का संचार हो गया था।

कालांतर में ऐसी फिल्मों बननी लगीं, जो समकालीन सामाजिक समस्याओं, रूढ़ियों और बुराईयों पर बनी थीं। दुनिया न माने, पड़ोसी और डॉ.कोटनिस की अमर कहानी जैसी फिल्में उस दौर के समकालीन सामाजिक विषयों पर आधारित थीं। अपनी फिल्मों के माध्यम से शांताराम ने सामाजिक कुरीतियों को बहुत स्पष्ट और तीखे शब्दों में दिखाने का प्रयास किया।

फिल्म दुनिया न माने के निर्देशक वी. शांताराम ने यह फिल्म 1937 में बनाई थी। उस दौर में बाल विवाह और बड़ी उम्र के पुरुषों द्वारा छोटी लड़कियों के साथ शादी करना आम बात थी। इस सामाजिक बुराई पर चोट करते हुए शांताराम ने मराठी में यही फिल्म कुंकू नाम से बनाई थी। इसके अलावा इस फिल्म ने विधवा के पुनर्विवाह की ओर भी इशारा किया था। 142

इस दशक के दौरान हिन्दी सिनेमा आम जनता के लिए मनोरंजन और आनंद का अटूट माध्यम बन चुका था। बेशक इसे पश्चिम से लाया गया था, लेकिन चालीस के दशक तक हिन्दी सिनेमा इतना परिपक्व हो चुका था कि अब इसमें स्वदेशीपन स्पष्ट झलकने लगा था। यही वजह थी कि आम जनता के बीच हिन्दी सिनेमा बेहद लोकप्रिय हो चुका था।

20वीं सदी के उत्तरार्ध के शुरुआती वर्षों तक विदेशी फिल्में और फिल्मकारों से हिन्दी सिनेमा भलीभांति परिचित हो चुका था। जहां हिन्दी सिनेमा विश्वमंच पर अपनी पहचान दर्ज करा चुका था, वहीं हमारी फिल्में भी विदेशी फिल्मों से प्रभावित होती

दिखने लगी थीं। 1953 में बिमल रॉय ने 'दो बीघा जमीन के माध्यम से पहली बार किसानों और कामगारों की समस्याओं को बड़े पर्दे पर पदर्शित किया। यह फिल्म इटली के विटोरियो दे सिका की नव-यथार्थवादी फिल्म 'द बाइसाइकल थीव्स से प्रेरित थी। इस फिल्म को बलराज साहनी और निरूपा रॉय के अभिनय के अलावा बेहतरीन सिनेमेटोग्राफी और निर्देशन के लिए हमेशा याद किया जाता रहेगा। देश ही नहीं विदेशों में भी इस फिल्म ने धूम मचा रखी थी। जहां भारत में इस फिल्म को निर्देशन के लिए पहला फिल्म फेयर पुरस्कार प्राप्त हुआ, वहीं वेनिस, मॉस्को और पेकिंग अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोहों में फिल्म की काफी प्रशंसा की गई। इसी तरह 'आवारा', 'आंधियां' और 'राही' जैसी सफल फिल्में भी हिन्दी फिल्मों के विषयवस्तु और कथानक में आ रहे परिवर्तन की ओर इशारा रही थीं।

गीतों में परिवर्तन

बोलना शुरू करते ही हिन्दी फिल्मों ने गाना भी सीख लिया था। तकनीकी रूप से पश्चिम से प्रेरित होने के बावजूद हमारे शुरुआती फिल्मकारों ने उनकी सीधी नकल नहीं की। इसके बजाय उन्होंने स्थानीय विषयों पर आधारित कहानियों को पर्दे पर उतारना शुरू किया। हिन्दी सिनेमा के 100 साल बाद भी आज ऐसी गिनी चुनी फिल्में ही हैं, जिनमें कोई गीत नहीं थे। सामान्य दर्शक के लिए तो ऐसी फिल्मों की कल्पना करना भी मुश्किल है।

गीत-संगीत हमारी तहजीब, संस्कार, बोलचाल में ऐसे समाए हैं कि हम इनके बिना अपनी फिल्मों को अधूरा मानते हैं। बल्कि न सिर्फ फिल्मों को, हिन्दी भाषाई प्रदेशों में तो हिन्दी फिल्मी गीत संस्कृति का हिस्सा हैं। चाहे घर हो या बाजार, ट्रेन का सफर हो या बस का, खुशी का मौका हो या गम का, हिन्दी फिल्मी गीतों के बिना जैसे बात पूरी नहीं होती।

पहली बोलती फिल्म आलम आरा के दे दे खुदा के नाम पर... से लेकर आज तक न जाने कितने गीत बन चुके हैं। कभी इन गीतों ने हमें रुलाया तो कभी जख्मों पर मरहम रखा। कभी झूमने की वजह दी तो कभी इश्क की गहराइयों को समझने की मदद दी। कभी तनहाइयों में गुनगुनाने की फितरत दी तो कभी महफिल में छा जाने की कैफियत दी। इन गीतों में शब्द पिरोने वाले भी जाने कितने गीतकार आए और चले गए, लेकिन रोज ही जाने-अनजाने उनके शब्दों में हम जिंदगी को और करीब से महसूस करते ही रहते हैं। यही कारण है कि फिल्मी गीत हमारी रोजमर्रा की जिंदगी का हिस्सा बन गए हैं।

यहां यह उल्लेख जरूर करना चाहिए कि गीतों के मामले में हिन्दी फिल्में पश्चिम की फिल्मों से थोड़ी अलग बैठती हैं। हिन्दी फिल्मों के गीत फिल्म के कलाकार, पात्र, परिस्थिति या जगह के अनुसार बनते हैं, जबकि पश्चिम में ऐसा नहीं होता। हमारी फिल्मों में प्लॉट और डायलॉग । का भी गीतों पर काफी असर दिखाई पड़ता है। 153

हिन्दी सिनेमा के शुरुआती दौर में कलाकार खुद ही अपनी आवाज में गाना गाते थे। इस समय तक पार्श्वगायन की शुरुआत नहीं हुई थी। उस दौर में गीतकारों का नाम अलग से नहीं लिया जाता था। शायद इन गीतों को फिल्म के संवाद लेखक या फिर खुद अभिनेता ही लिख दिया करते थे। पार्श्वगायन की शुरुआत फिल्म 'धूप छांव' से हुई, जिसके गीतकार थे पंडित सुदर्शन। 40 के दशक के आते-आते फिल्मों में गीत-संगीत जरूरी सा हो गया था।

प्लेबैक सिंगिंग की शुरुआत होने से गीतद्दसंगीत फिल्मों का अभिन्न हिस्सा बन गए। फिल्मों की सफलता के लिए गीतों का होना जरूरी हो गया था। फिल्मों में गीतों की संख्या बढ़ती जा रही थी। मिसाल के तौर पर फिल्म 'ताजमहल' में 17 गीत थे, 'भक्त कबीर' में 16, कारवां में 15 और सती सीता में 20 गाने थे। 154

उस दौर के प्रमुख गीतकारों में केदार शर्मा, डी एन मधोक, मुंशी आरजू लखनवी और कवि प्रदीप के नाम लिए जा सकते हैं। केदार शर्मा 1936 में बनी फिल्म देवदास के लिए बालम आए बसो मेरे मन में... और दुख के दिन अब बीतत नाही...जैसे गीतों से पहले ही नाम कमा चुके थे। 40 के दशक में भी उन्होंने फिल्म निर्देशन के साथ-साथ बहुत सी फिल्मों में गीत लिखे। 1941 में आई चित्रलेखा में उनके गीत सैंया सांवरे भये बावरे.., सुन सुन नीलकमल मुस्काए... और तू जो बड़े भगवान बने... खासे लोकप्रिय हुए थे।

बंटवारे में बांटा सिनेमा

1947 में देश आजाद हुआ। देश बंटा। देश के इस हिस्से में रहने वाले लोग उस तरफ चले गए, जबकि कई यहां चले आए। फिल्मी दुनिया में भी बदलाव आया। मसलन संगीतकार निसार बजूमी, गायिका नूरजहां पाकिस्तान चले गए। बी आर चोपड़ा, साहिर लुधियानवी जैसे कई बड़े नाम हैं, जो विभाजन के बाद इस तरफ आए और फिल्मों में छा गए। आजादी की खुशी और उसके बाद हुए बंटवारे का दर्द इन गीतकारों की कलम से खुल कर बिखरा। अब ब्रिटिश प्रतिबंध का काला साया सर से उठ चुका था। भाषा का रंगरूप भी अब कुछ बदल गया था। इस वक्त तक हिन्दी और उर्दू के मिले जुले शब्दों का प्रयोग होने लगा था। 155

बंटवारे के दौर का सीधा असर हिन्दी सिनेमा पर पड़ रहा था। पूरे सिनेमा जगत में मंदी छाने लगी थी। यह दौर खत्म हुआ तो, फिल्मों के कथानक में बदलाव आ गया। सभी को इस बात का अहसास था कि देश की वर्तमान पीढ़ी अभूतपूर्व दौर से गुजर रही है। सभी ने आजादी का स्वाद पहली बार चखा था। सभी को मिलजुल कर देश

को तरक्की के रास्ते पर ले जाना है। फिल्म उद्योग को भी इसमें अपना योगदान देना। था। इसी बीच 1948 में महात्मा गांधी की हत्या हो गई। गीतकार राजेंद्र कृष्ण ने महात्मा गांधी की याद में 'सुनो सुनो ए दुनिया वालो, बापू की ये अमर कहानी गीत लिखा। इसे मोहम्मद रफी ने गाया था। इस गैर फिल्मी गीत की रचना फिल्म जगत के लोगों ने की थी। एक गीतकार होने के साथ-साथ राजेंद्र एक सफल पटकथा लेखक भी थे और 1990 तक सक्रिय रहे। अनारकली, नागिन, भाई भाई, 'अदालत जैसी ढेरो फिल्मों में उनके यादगार गीत रहे।

आजादी के बाद धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और स्टंट प्रधान फिल्मों की बजाय फिल्में प्रेम कथा और सामाजिक विषयों पर आधारित होने लगीं। फिल्मों के नए विषय सामने आए। गीत-संगीत और अभिनय आदि सभी क्षेत्रों में नई प्रतिभाएं सामने आईं। इसका असर गीतों पर पड़ना लाजमी था। 1948 में राजकपूर की पहली फिल्म आग आई। फिल्म के गाने शायर बहजाद लखनवी ने लिखे थे और संगीत दिया था राम । गांगुली ने। मुकेश ने जिदा हूं इस तरह, गीत गाया। श्मशाद बेगम ने अपनी सुरीली आवाज में काहे कोयल शोर मचाए रे.. गाया। इस दौर के गीतों में शायरी हावी थी। अब बन की चिड़िया बन बन डोलू रे... जैसे अंदाज और अल्फाज नहीं रहे। फिल्मों में कहानी के पात्रों और कलाकारों के हिसाब से गाने बनाए जा रहे थे।

1949 में राजकपूर की 'बरसात' और महबूब खान की 'अंदाज' जैसी बड़ी फिल्में आईं। 'अंदाज में नौशाद का संगीत था और बरसात से आए शंकर जयकिशन। गीतकारों की बात करें, तो शकील बदायूंनी, शैलेंद्र और हसरत जयपुरी जैसे नाम इसी दौर में आए थे। इसी वक्त सुरैया की फिल्म बड़ी बहन आई, जिसमें राजेंद्र कृष्ण ने गीत लिखे थे। ये सभी समर्पित लोग थे। फिल्म बरसात के जरिए लता मंगेशकर छा गईं। इसके गीत तुम से मिले हम..., हवा में उड़ता जाए..., जिया बेकरार है. जैसे गाने उन्होंने गाए । बड़ी बहन में चुप चुप बैठे हो जरूर कोई बात है... गीत को भी लता जी ने आवाज दी। पचास के दशक के ये गाने अपनी सादगी और संवेदनशीलता के लिए याद किए जाते हैं।

प्रेम धवन ने 1948 की फिल्म जिद्दी से अपना सफर शुरू किया। यह वही फिल्म थी। जिसमें किशोर कुमार ने पहली बार देव आनंद के लिए गाया था - मरने की दुआएं क्यों मांगू। उन्होंने तराना, मिस बॉम्बे, जागते रहो, काबुलीवाला, दस लाख, एक फूल दो माली, अपलम चपलम, हम हिन्दुस्तानी आदि के लिए कई अच्छे गीत लिखे। उनकी कलम से छोड़ो कल की बातें... हम हिन्दुस्तानी), ऐ मेरे प्यारे वतन... काबुलीवाला) जैसे गीत निकले। मनोज कुमार ने उन्हें गीतकार, संगीतकार की दोहरी भूमिका में आजमाया और 1985 की फिल्म शहीद में मेरा रंग दे बसती चोला, जोगी हम तो लुट गए... ऐ वतन, ऐ वतन... आदि गीत उनके सबसे यादगार गीतों में शामिल थे।

स्टूडियो सिस्टम की शुरुआत

'बॉम्बे टॉकीज - हिन्दी फिल्मी संगीत की दुनिया में प्रथम महिला संगीतकार को लाने का श्रेय इस स्टूडियो को जाता है। उस समय बम्बई, कलकत्ता, मद्रास और पुणे फिल्म निर्माण के मुख्य केंद्र थे। न्यू थिएटर्स, प्रभात फिल्म्स, बॉम्बे टॉकीज जैसे प्रमुख स्टूडियो ने अहम भूमिका निभाते हुए जनता को साफ-सुथरी फिल्में दीं और उनका भरपूर मनोरंजन किया। संगीत इन फिल्मों का सबसे सशक्त पक्ष था। संगीत विभाग इन स्टूडियोज का प्रमुख विभाग होता था। फिल्मों के शुरुआती दौर में इन फिल्मों में भक्ति संगीत और नाट्य संगीत का पुट सुनने को मिलता था। बाद में जैसे-जैसे फिल्म संगीत के रिकॉर्डिंग में सुधार हुए, इसमें महत्वपूर्ण सुधार आया। बॉम्बे टॉकीज को भारत की प्रथम महिला संगीतकार को फिल्मों में लाने का श्रेय जाता है। खुर्शीद मिनोचर होम जी नाम की पारसी महिला ने पारसी समाज की आलोचना के कारण फिल्मों में सरस्वती देवी नाम से संगीत दिया। बॉम्बे टॉकीज की पहली फिल्म जवानी की हवा से लेकर नया संसार तक सरस्वती देवी ने इस स्टूडियो की 19 फिल्मों में संगीत दिया।

संगीतकार अनिल विश्वास ने महबूब खान की शुरुआती फिल्मों में संगीत दिया था, जिसमें 'औरत' और रोटी - दो ऐसी फिल्में थी, जिसका संगीत सुपरहिट साबित हुआ। बाद में अनिल विश्वास बॉम्बे टॉकीज से जुड़े और 1943 में बनी फिल्म 'किस्मत' में उनका संगीत काफी चर्चित रहा। खासकर देशभक्ति गीत दूर हटो ऐ दुनियावालो ने तहलका मचा दिया था और धीरे-धीरे आ रे बादल.. और घर घर में दिवाली हैं.. कालजयी गीत साबित हुआ। मुकेश और तलत महमूद जैसे गायकों को स्थापित करने वाले भी अनिल विश्वास ही थे।

40 के दशक में हिन्दी फिल्मों के संगीत में फ्यूजन की शुरुआत हुई। पहली बार मास्टर गुलाम हैदर ने ढोलक का इस्तेमाल कर

पंजाबी लोक संगीत प्रस्तुत किया। हैदर ने शमशाद बेगम को हिन्दी फिल्म संगीत से जोड़ा। फिल्म खजांची में सावन के नजारे हैं दआहा आहा... गाने को शमशाद बेगम ने गाया। 1942 में खानदान फिल्म में नूरजहां को गीत गाने का मौका मिला। 1948 में फिल्म 'मजबूर' में मास्टर गुलाम हैदर के संगीत निर्देशन में लता मंगेशकर ने पहला हिट गीत गाया। 1950 के दशक का चार्ट बस्टर गीत बना आएगा आने वाला... खेमचंद्र प्रकाश के संगीत निर्देशन में लगा मंगेशकर की आवाज में गाया गया फिल्म 'महल' के इस गीत ने लता को एक नई पहचान दी। खेमचंद्र प्रकाश ने ही पहली बार किशोर कुमार से फिल्म 'जिद्दी' के लिए पार्श्व गायन कराया था। गाना था मरने की दुआएं क्यों मांगू...।।

1940 में फिल्म 'प्रेमनगर' के साथ नौशाद ने संगीत निर्देशन की शुरुआत की। 1944 में फिल्म रतन आई, जिसके गानों का संगीत निर्देशन नौशाद ने ही किया था। फिल्म के गाने बहुत मशहूर हुए। इसी फिल्म के साथ उत्तर प्रदेश के लोक संगीत पर आधारित धुनों का प्रयोग किया गया। 1949 में नौशाद ने अनमोल घड़ी आदि फिल्मों में संगीत दिया, लेकिन 1952 में बैजू बावरा के साथ नौशाद ने एक नई मिसाल कायम की। इसके लिए उन्हें द्य नौशाद और मो. रफी का दुर्लभ फोटो फिल्मफेयर अवॉर्ड से भी नवाजा गया। फिल्म 'मुगलकृएकृआजम' के अमर संगीत के लिए भी नौशाद को याद किया जाता रहेगा। मोहम्मद रफी, सुरैय्या, श्याम कुमार और उमा देवी (टुनटुन) को हिन्दी सिनेमा में लाने का श्रेय भी नौशाद साहब को जाता है। उन्होंने कुंदन लाल सहगल के साथ एक ही फिल्म 'शाहजहां की, लेकिन इस फिल्म के गीत जब दिल ही टूट गया..., गम दिए मुश्तकिल.. और रूबी.बी.. गीत बहुत मशहूर हुए।

इस समय जिन संगीतकारों ने संगीत को आधुनिक शक्ल दी, वो थे नौशाद, एस डी बर्मन और शंकर जयकिशन। खास कर देव आनंद की। फिल्मों के उनके मशहूर गाने हों या फिर गुरुदत्त की प्यासा के गाने जिनमें गिटार और बेस की ध्वनि पर शब्द लयबद्ध हुए। इन गानों में धुन के साथ-साथ शब्दों का बहुत महत्व हुआ करता था। फिल्म मुगले आजम में नौशाद ने जिस तरह ऑर्केस्ट्रा का इस्तेमाल किया वह भव्यता का अहसास कराता था।

उपसंहार

आज हिन्दी सिनेमा का दर्शक भी पहले की तुलना में ज्यादा समझदार और संवेदनशील है। पॉपुलर सिनेमा की परिभाषाएं बदली हैं। नई तरह की फिल्में आ रही हैं, जिनके सवाल और उन सवालों को देखने का अंदाज भी नया है। आज का दर्शक न सिर्फ सच देखना जानता है बल्कि उसे स्वीकारने की क्षमता रखता है। यही कारण है कि आज की फिल्मों में तकनीक से लेकर विषयवस्तु तक और कहानी से पात्र तक सभी आम लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। हिन्दी सिनेमा नई भाषा में नए समय की कहानी रच रहा है। ग्लोबलाइजेशन के इस दौर में दुनिया की भौगोलिक सीमाएं ढह रही हैं और हिन्दी सिनेमा भारत की सरहदों के बाहर भी देखा और सराहा जा रहा है। हमारी मसाला फिल्मों में लव, इमोशन और ड्रामा का तड़का अब केवल देसी नहीं रहा। न जाने यह कब और कैसे ग्लोबल हो गया। बॉलिवुड दुनिया की सबसे बड़ी फिल्म इंडस्ट्री बन चुका है, जो बिना किसी सरकारी संरक्षण और सहायता के अपने फिल्मों का एक्सपोर्ट करीब 100 देशों में कर रहा है। अमेरिका, ब्रिटेन और खाड़ी देशों के अलावा सिंगापुर, इटली, चीन, दक्षिण कोरिया, दक्षिण अमेरिका, पोलैंड, बेल्जियम, लग्जमबर्ग, हॉलैंड, अल्जिरिया, तुर्की, सर्बिया, क्रोएशिया, दक्षिण अफ्रीका, मेक्सिको, अर्जेटीना, ब्राजील जैसे देश हिन्दी सिनेमा के लिए उभरते बाजार हैं। 1999 में रिलीज हुई सुभाष घई की फिल्म ताल ने पहली बार कमाई के हिसाब से अमेरिका में टॉप 20 और यूके में टॉप 10 में जगह बनाई। यह सिलसिला लगातार बढ़ता रहा। यह हाल तब है जब हमारी ज्यादातर फिल्में जलंधर, लुधियाना, इलाहाबाद, पटना और धनबाद को ध्यान में रखकर बनाई जाती हैं, ग्लोबल मार्केट को ध्यान में रखकर नहीं। न ही हमारा बजट हॉलिवुड जितना होता है। हमारी फिल्म इंडस्ट्री इंटरनैशनल पब्लिसिटी के लिए भी उतना पैसा नहीं खर्च कर सकती। इसके बावजूद दुनिया में हॉलिवुड को कॉम्पिटिशन अकेले हिन्दी सिनेमा ही दे रहा है।

संधर्व ग्रन्थ सूची

रंगन बारदवाज (8 जनवरी 2017). "मसाला रेडक्स" हिन्दू। 8 जनवरी 2017 को पुनः प्राप्त

इवेयर राहेल (2014). चित्र अबी हैकी: बॉलीवुड के रूप में एक आधुनिक भारत गाइड Hachette। पी। 70. आईएसबीएन 9789 35009 8608

देसाई लॉर्ड मेघनाद (4 मई 2013). "बॉलीवुड कैसे भारतीय वास्तविकताओं दर्पण" बीबीसी। 15 जनवरी 2014 को पुनःप्राप्त

स्वामीनाथन रूपा (2017). बॉलीवुड बूम: भारत का उदय एक सॉफ्ट पावर के रूप में रैंडम हाउस पब्लिशर्स आईएसबीएन 978 9 3864 9 543

श्रीधरन तिवारी (25 नवंबर 2012). "मदर इंडिया, न वुमेन इंडिया" हिन्दू। चेन्नई भारत 6 जनवरी 2013 को मूल से संग्रहीत। 5 मार्च 2012 को पुनःप्राप्त।

टीओ स्टीफन (2017). पूर्वी पश्चिमी: फिल्म और शैली बाहर और हॉलीवुड के अंदर। टेलर और फ्रांसिस पी। 122. आईएसबीएन 97813175 9 2266

राज्याक्ष आशीष (2016). भारतीय सिनेमा: एक बहुत छोटा परिचय ऑक्सफोर्ड यूनिवरसिटि प्रेस। पी। 61. आईएसबीएन 9780191034770

चौधरी दीपातीरति (2015). सलीम-जावेद द्वारा लिखित: हिंदी सिनेमा की महानतम पटकथा लेखक की कहानी पेंगुइन बुक्स पी। 72. आईएसबीएन 978 9 352140084

चौधरी दीपातीरति (2015). सलीम-जावेद द्वारा लिखित: हिंदी सिनेमा की महानतम पटकथा लेखक की कहानी पेंगुइन समूह पी। 74. आईएसबीएन 978 9 352140084

वोलोडोज़ा डेविड (13 जून 2015). "30 साल बाद, हॉलीवुड में यह चीनी फ़िल्म अभी भी इकोस" राजनयिक

डोनिगर वेंडी (2005). "अध्याय 6: पुनर्जन्म" वह महिला जिसने दिखाया कि वह कौन था: आत्म-अनुकरण के मिथक। ऑक्सफोर्ड यूनिवरसिटि प्रेस। पीपी 112-136 [128-31 और 135] आईएसबीएन 0-19-516016- 9

Corresponding Author

Renu Kansal*

Research Scholar of OPJS University, Churu Rajasthan